International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly

ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue-7 March- Apr 2022

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)

A Multidisciplinary International Level Referred and Peer Reviewed Journal

March-Apr Volume-2 Issue-7

On

Chief Editor
P. R. Talekar
Secretary
Young Researcher Association, Kolhapur (M.S), India

Editor
Prof. Dr. V. V. Killedar
Rajarshi Chhatrapati Shahu College, Kolhapur

Co- Editors

डॉ. एस. पी. पवार	लैफ्ट.डॉ. आर.सी. पाटील	डॉ. एस. जे. आवळे
प्रा. एन.पी. साठे	प्रा. ए. बी. घुले	प्रा. डॉ.एम. टी. रणदिवे
	डॉ. एन. ए. देसाई	

Published by- Young Researcher Association, Kolhapur (M.S), India

The Editors shall not be responsible for originality and thought expressed in the papers. The author shall be solely held responsible for the originality and thoughts expressed in their papers.

© All rights reserved with the Editors

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly

ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue. 7 Mar-Apr 2022

CONTENTS

Sr. No.	Paper Title	Page No.
1	हिंदी उपन्यास और दलित विमर्श डॉ. लिपारे अजित विठ्ठल	1-2
2	पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' उपन्यास का नायक किन्नर विनोद अनिल विठ्ठल मकर	3-4
3	भूमंडलीकरण और 21 वीं सदी की हिंदी कविता में प्रतिबिंबित मानवी मूल्य डॉ. अशोक मरळे	5-7
4	दूसरा घर' उपन्यास में महानगरीय जीवन प्रा. डॉ. बेबी राघू कोलते	8-9
5	मृदुला गर्ग के कथा साहित्य मे स्त्री विमर्श डॉ. भागवत भगवान देवकाते	10-11
6	'मढ़ी का दीवा' उपन्यास में नारी सम्मान की अभिव्यंजना श्री अक्षय राजेंद्र भोसले	12-15
7	दीप्ती खंडेलवाल की कहानियों में अभिव्यक्त नारी के विविध आयाम प्रा.डॉ. एकलारे चंद्रकांत नरसप्पा	16-17
8	ममता कालिया के 'कितने प्रश्न करूँ' खंडकाव्य में स्त्री – विमर्श प्रा. डॉ. दयानंद बी पाटील	18-19
9	सलिल सुधाकर की कहानियों में महानगरीय जीवन दिपाली विकास जाधव	20-21
10	कृषक जीवन की समस्या दया शंकर यादव	22-25
11	इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में पारिस्थितिकी चिंतन प्रो. डॉ. सदानंद भोसले, प्रा.एन.बी.एकिले	26-28
12	राष्ट्र के उन्नयन के लिए आदर्श चरित्रों की आवश्यकता : 'मिल्कियत की बागडोर डॉ. एकनाथ श्रीपती पाटील	29-32
13	हिंदी साहित्यः नारी विमर्श- "प्रभा खेतान का उपन्यास 'आओ पेपे घर चलें' के संदर्भ में" प्रा. डॉ.जेनेट फिलिप बोर्जिस	33-35
14	आदिवासी दलित विमर्श में वीरेन्द्र जैन का चित्रण के. प्रमीला	36-38
15	नागार्जुन' के उपन्यासों में किसान विमर्श प्रा. कैलास बबन माने	39-41
16	हिंदी कहानियों में प्रतिबिंबित नारी विमर्श डॉ. काकासो बापूसो भोसले	42-44
17	भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में स्त्री लेखन और रूढ़िमुक्त नारी डॉ.कल्पना पाटोळे	45-47
18	चंद्रकांता के 'अंतिम साक्ष' उपन्यास में नारी विमर्श डॉ.रंजना अप्पासाहेब कमलाकर	48-49
19	हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श डॉ. महिपती जगन्नाथ शिवदास	50-51
20	अस्तित्व उपन्यास में अस्तित्व की तलाश: किन्नर विमर्श के संदर्भ में डॉ मंजु पुरी	52-55
21	भगवान गव्हाडे की कविताओं में आदिवासी चेतना विशेष संदर्भ 'आदिवासी मोर्चा डॉ. मनोहर जमधाडे	56-57
22	आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में नारी-विमर्श प्रा. मारुफ मुजावर	58-59
23	हिंदी उपन्यासों में भूमण्डलीकृत भारत डॉ. मीनाक्षी चैधरी	60-62

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में पारिस्थितिकी चिंतन

प्रो. डॉ. सदानंद भोसले[1] प्रा.एन.बी.एकिले[2]
[1]शोध – निर्देशक सहायक प्राध्यापक , सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय,पुणे
[2]पीएच.डी शोधार्थी, हिन्दी विभाग, शिवराज महाविद्यालय, गडहिंग्लज

आधुनिक साहित्य की नई प्रवृत्ति के रूप में पारिस्थितिकी चिंतन नवीन साहित्यिक जीवन दर्शन बनकर उभरा है। पारिस्थितिकी का नाश उपभोगवादी संस्कृति की खतरनाक परिणति है। पारिस्थितिकी साहित्य में पर्यावरण विनाश और प्राकृतिक संसाधनों की लूट का मुख्य कारण पूंजीवाद और आधुनिक जीवन शैली को माना जाता है। पूंजीवाद विकास शैली ने प्रकृति का जो विनाश किया उसके विरोध में पर्यावरण आंदोलन की शुरुआत हुई। रणधीर सिंह ने पर्यावरण ह्रास का मुख्य कारण पूंजीवाद को माना है। वे लिखते हैं "पर्यावरण या पारिस्थितिकी के प्रति दुनिया की बढ़ती चेतना इस बात को रेखांकित करने में सफल नहीं हो पाई है कि इस ग्रह के लिए खतरा प्रतीत होने वाले विकास के प्रारूप का नाम वास्तव में पूंजीवाद है। यह पूंजीवाद उत्पादन की एक ऐसी व्यवस्था है, जिसका संरचनात्मक तर्क अवश्यंभावी रूप से पर्यावरण को नुकसान पहुंचाता है।"[1] पारिस्थितिकी प्रदूषण की समस्या वर्तमान संदर्भ में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त है। यह केवल भारत ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व की समस्या है।

आज भूमंडलीकरण के दौर में तथाकथित विकास के नाम पर वनों की अंधाधुंध कटाई, समुद्र एवं नदियों की गति और दिशा में मनमाना परिवर्तन, औद्योगिकरण और शहरीकरण, खनिज उत्खनन के नाम पर पारिस्थितिकी तंत्र का आवश्यकता से अधिक दोहन, जैव विविधता का क्रमिक ऱ्हास मनुष्य के सभ्य होते चले जाने का बर्बर इतिहास प्रमाणित कर रहा है। आज अंतरराष्ट्रीय कंपनियां प्रतियोगिता में है कि कौन कामगारों का सबसे अधिक शोषण और पारिस्थितिकी को सबसे अधिक बर्बाद कर सकता है। वर्तमान में विकास का अर्थ है पारिस्थितिकी तंत्र का विनाश और व्यक्ति का अमानवीकरण आज विकास की लालसा एवं मोह में मनुष्य जल, जंगल और जमीन को नष्ट कर रहा है। इक्कीसवीं सदी के प्रतिनिधि उपन्यासों में औद्योगिक क्रांति, मल्टीनेशनल कंपनियों का निर्माण, लोह और युरेनियम खदान का निर्माण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग पेड़-पौधों की कटाई, जीव - जंतुओं का नष्ट होना, पशु - पक्षियों की हत्या, रासायनिक एवं कीटकनाशक पदार्थों के बढ़ते उपयोग के कारण किस प्रकार पारिस्थितिकी तंत्र का ऱ्हास हो रहा है इसका प्रभावशाली विवेचन प्रस्तुत किया है। इसी पारिस्थितिकी तंत्र के ऱ्हास को लोगों तक पहुंचाना और लोगों के अंदर पारिस्थितिकी संरक्षण एवं संवर्धन के प्रति जागरूकता लाना तथा उसे जन आंदोलन बनाना आवश्यक है। आज हिंदी साहित्य के इतिहास में पारिस्थितिकी विषय को आधार बनाकर व्यापक स्तर पर लिखा जा रहा है। पारिस्थितिकी संकट की समस्या पर लिखने वाले हिंदी के प्रतिनिधि उपन्यासकारों में कमलेश्वर, एस.आर.हरनोट, नासिरा शर्मा, शांता कुमार, अभिमन्यु अनंत, कामतानाथ, नवीन जोशी, अलका सरावगी, विद्यासागर नौटियाल, ब्रजेश बर्मन, संजीव, कुसुम कुमार, महुआ माजी, रत्नेश्वर सिंह और भालचंद्र जोशी आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आज संपूर्ण विश्व में विकास की अंधी दौड़ चल रही है। आज का मनुष्य न तो पारिस्थितिकी का ध्यान रख रहा है और न ही अपने संभावित भविष्य का। इस अत्याधिक और नियंत्रित विकास और प्राकृतिक संसाधनों के और अनैतिक दोहन ने मनुष्य के स्वास्थ्य को खतरे में डाल दिया है। आजादी के बाद से देश में खनन उद्योग के विकास पर अधिक ध्यान दिया है। जहां खनन कार्य से एक और भूमि और वायु प्रभावित होती है, वही भूमिगत खुदाई से प्राकृतिक जल - स्रोत और जल - स्तर पर भी प्रभाव पड़ता है। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में महुआ मांजी ने यूरेनियम खनन से उत्पन्न होने वाली विकिरण के दुष्प्रभाव का प्रभावशाली वर्णन किया है। किस तरह यह स्थानीय लोगों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव के साथ-साथ जल के प्राकृतिक स्रोतों को भी प्रदूषित कर रही है। इसके संदर्भ में वे लिखती हैं "आजकल सालों भर हमा तालाब पानी से लबालब रहते हैं मगर यहां का पानी बहुत भारी हो गया है। सर डुबाओ तो बाल मोटे लगते हैं। साबुन घिसते जाओ घिस जाओ झाग ही नहीं होता। टेलिंग डैम से रिस रिस कर अंदर ही अंदर आता है यूरेनियम के कचरे का जहरीला पानी। तालाब सूखेगा कैसे अगर किसी के पांव में घाव हो और पांव टेलिंग डैम के गीले कचरे में पड़ जाये तो साल भर लग जाएगा उस घाव को सूखने में।"[2]

उषा ओझा ने 'बहाव' उपन्यास के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि बहाव में सब कुछ बह गया लेकिन फिर भी जिंदगी का बह रुकता नहीं, वह निरंतर चलता रहता है। प्रस्तुत उपन्यास बिहार के जल - प्रलय में चिर समाधिस्थ लोगों की याद को उजागर करता है। 2008 में जब कुहसा तटबंध टूटा तो वह लाखों लोगों की बर्बादी का कारण बना। लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से बिहार में अ

वाली बाढ़ के कारणों की पड़ताल की है, जिसमें मुख्य रूप से तटबंधों को कारण माना गया है। यहां पर उषा ओझा बांध के विरोध में नहीं है। लेकिन उसकी उपयोगिता और निर्माण में हुए भ्रष्टाचार और लापरवाही पर बहुत बड़ा प्रश्नचिन्ह खड़ा करती है। लेखिका बाढ़ पीड़ितों के प्रति अपनी चिंता प्रकट करते हुए लिखती है "लोगों को यह चिंता सताने लगती है कि पानी उतरने के बाद क्या होगा, घर की सारी जमा पूंजी खत्म हो गई बड़े किसान तो किसी तरह इंतजाम कर भी लेंगे, लेकिन छोटे किसानों का क्या होगा? घर में खाने के लिए जब अनाज ही नहीं है, तो बुआई के लिए बीज कहां से आएगा? बाजार से खाद, बीज खरीदने के पैसे कहां से आयेंगे? तीन चार महीने के बाद जब शीतलहरी चलेंगी, तब कैसे गुजरेगी इनकी जिंदगी? ठंड कैसे काटेंगे ये? बिना छत के इनकी क्या हालत होगी?"[3] इन सभी प्रश्नों पर चिंता जाहिर करते हुए लेखिका सरकार को यह सुझाव देती है कि फसलें, जो हर साल पानी से तबाह होकर भूखमरी की स्थिति तक पहुंचती है, उसके विकल्प में सरकार पानी से जुड़े व्यवसाय जैसे मखाने, कमलडंडी, कमलगट्टे, सिंघाड़ा आदि फसलें तथा मछली पालन की शुरुआत करके यहां के लोगों को त्रासदी में भी संजीवनी दे सकते हैं।

जल, जमीन, जंगल, विस्थापन, प्रदूषण और विकिरण से जूझते आदिवासी अपनी चेतना व्यक्त करने के लिए आंदोलन का तरीका अपनाते हैं, तो सरकार उन्हें देशद्रोही, आतंकवादी, नक्सलवादी, माओवादी करार देती है। महुआ माजी ने सरकार, पूंजीपति, राजनेता और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा अशिक्षित, असंस्कृत तथा नादान आदिवासियों पर हो रहे शोषण, दोहन तथा रेडियो विकिरण के कारण उनके बिगड़ते स्वास्थ्य का चित्रण भोगे हुए यथार्थ के आधार पर किया है। विकिरण प्रदूषण के फलस्वरुप विकलांगता, बांझपन, टी.बी, कैंसर, फेफड़ों की बीमारी जैसी असाध्य बीमारियों का प्रकोप लगातार बढ़ रहा है। लेखिका लिखती है "हमारे लोग... हमारे जैसे लोग... पहले की तरह विकिरणमुक्त परिवेश में सांस ले पायेंगे। यह कैसी विडंबना है कि हमारी औरतें पांच हो रही है... हमारे बच्चे विकलांग पैदा हो रहे हैं...हमारे लोग जवानी में ही कैंसर या टी.बी से मर रहे हैं और हम इसके विरोध में आवाज उठाते हैं... कोई कदम उठाते हैं तो देशद्रोही करार दिये जाते हैं! कमाल है! यह कैसा लोकतंत्र है? यह कैसी सभ्यता है?"[4] लेखिका ने उपन्यास के नायक सगेन के माध्यम से आदिवासी समाज की पीड़ा एवं दुख को अभिव्यक्त किया है।

समग्र विश्व में वन चेतना जगाने के लिए चिपको आंदोलन की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। चिपको आंदोलन की शुरुआत सत्तर के दशक में हुई और अस्सी के दशक तक इसने व्यापक रूप ग्रहण किया। सन 1981 ई. में उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्र में चिपको आंदोलन का प्रादुर्भाव हुआ था। एक हजार मीटर से अधिक ऊंचाई के क्षेत्र में हरे - भरे पेड़ों की व्यापारिक कटाई पर पाबंदी लगाकर चिपको आंदोलन की धार को और अधिक मजबूत किया था। 'दावानल' उपन्यास में नवीन जोशी ने अपनी सशक्त लेखनी के माध्यम से एक अछूते विषय चिपको आंदोलन की रोमांचकारी और त्रासद कथा को बड़े प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। उन्होंने विकास के नाम पर सड़कों का जाल बिछाने के लिए किस प्रकार तेजी से जंगलों का दोहन किया जा रहा है। इसका प्रभावशाली विवेचन प्रस्तुत करते हुए लिखा है " विकास के नाम पर बिछाए जाते सड़कों के जाल ने जंगलों के सफाए में मदद की। जंगल तेजी से साफ हो रहे थे और गुलाम भारत में उपलब्ध थोड़ी - बहुत वन - सुविधाएं भी आजाद भारत में छिनती गईं। बड़ी-बड़ी कंपनियों को विशाल वन-क्षेत्र कई-कई बरस के लिए औने-पौने भाव बेच दिए गए। ठेकेदार वन अधिकारियों की मिलीभगत से जंगलों का सफाया करते और अपनी तिजोरियां भरते रहे।"[5] स्पष्ट है कि गुलाम भारत में जो कुछ हरियाली बची थी उसे स्वतंत्र भारत में विकास के नाम पर ठेकेदार एवं अधिकारियों की मिलीभगत तथा बड़ी-बड़ी कंपनियों के द्वारा बड़ी तेजी से नष्ट किया जा रहा है।

भारतीय संस्कृति में मनुष्य तथा अन्य जीव-जंतुओं के साथ ही प्रकृति के पारस्परिक संबंध तथा सह अस्तित्व के महत्व को आरंभिक काल से ही पहचाना गया है। वैदिक मंत्रों में मनुष्य और प्रकृति के पारस्परिक सहयोग एवं सद्भाव के चित्रों के साथ ही संपूर्ण जीव जगत में शांति की कामना व्यक्त हुई है। बौद्ध और जैन साहित्य में जीव-जंतुओं के दया, करुणा की गहन भावना का वर्णन करते हुए अहिंसा धर्म को मनुष्य का परम धर्म माना गया है। आधुनिक युग में मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधाओं के लिए प्रकृति का इस तरह दोहन शुरू किया कि जीव-जंतुओं का अस्तित्व ही खतरे में पड़ा है। अपने प्रवृत्ति विजय के अहंकारपूर्ण अभियान में मनुष्य ने अपने ही अस्तित्व के लिए खतरे उत्पन्न कर लिए हैं। प्रसिद्ध उपन्यासकार कमलेश्वर ने 'अनबीता व्यतीत' उपन्यास में जीव-जंतुओं के प्रति बाजारवादी मानसिकता को प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं " बाजारवाद के अपने व्यापारिक नियम हैं! टूरिस्टों को आकर्षित करने और रिझाने के लिए हमने भी यदि हांगकांग और सिंगापुर फार्मूले अपनाएं, तब तो सब-कुछ नष्ट हो जाएगा! सिंगापुर-हांगकांग के रेस्टोरेंट्स में ग्लास टैक्स में तैरती जिंदा मछलियों, केकड़ों और लाॅब्सटर्स को दिखाकर वे पूछते हैं कि इनमें से आप किस मछली, केकड़े या झींगे को पसंद करेंगे और चुनाव के बाद वही जिंदा

मछली, केकड़ा या शाही झींगा आपकी प्लेट में पक कर आ जाता है। सर! सोचिए... यह कितना अमानवीय है?"[6] स्पष्ट है कि लेखक ने पर्यटन व्यवसाय एवं बाजारवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के लिए पाश्चात्य देशों का अंधानुकरण करने वाली प्रवृत्ति का डटकर विरोध किया है। वर्तमान समय में औद्योगिकीकरण के कारण वायुमंडल में जहरीली गैस की मात्रा अधिक बढ़ रही है। मुझे लगता है कि औद्योगिकीकरण पारिस्थितिकी संकट पैदा करने में सबसे बड़ा कारण रहा है। औद्योगिकीकरण ने विकास तो दिया है लेकिन वायु प्रदूषण का उपहार भी तो हमें दिया है। 2 दिसंबर 1984 ई. को भोपाल की यूनियन कार्बाइड कारखाने से निकली जहरीली गैस से हाहाकार मचा था। इस भयानक हादसे का जिक्र 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में अलका सरावगी ने विवेक देवराय और भट्ट के वार्तालाप के माध्यम से प्रस्तुत किया है। वे लिखती है " भोपाल में जब यूनियन कार्बाइड की फैक्टरी से जहरीली गैस फैली होगी, उसके पहले क्या उन लोगों ने सोचा होगा कि उनकी जिंदगी इस तरह अचानक तबाह हो जाएगी।"[7] भोपाल गैस कांड में जहरीली हवा के वर्षन से सांस घुटकर तीन हजार से अधिक लोगों की मौत हुई थी। कई लोग शारीरिक एवं बौद्धिक विकलांगता के शिकार हुए थे। आज कई तरह के गैसों की वजह से अल्ट्रावायलेट रेस को रोकने वाली ओजोन परत कम होती जा रही है। उसमें छेद तो पड़ ही चुका है और आज भी यह छेद बढ़ता ही जा रहा है। छेद का बढ़ना पारिस्थितिकी के अस्तित्व के लिए खतरें की घंटी है।

आज मनुष्य के द्वारा जीव-जंतुओं का व्यापक मात्रा में उपभोग किया जा रहा है। विश्व में जीव-जंतुओं को सबसे अधिक खतरा चीनी लोगों से है। चीन ने दुनिया को न सिर्फ महामारियां दी है, बल्कि चीन के जीव - जंतु को खाने की आदत ने कई जंतुओं को उनके विलुप्त होने के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। "रह गई दिशाएं इस पार" उपन्यास में संजीव लिखते हैं " जो भी चीज पानी में तैरती हो चीनी उसे खा सकते हैं सिर्फ पानी वाले जहाज और नावे छोड़कर।"[8] दुनिया के हर देश में खानपान की अलग-अलग परंपराएं हैं। लेकिन चीन एक ऐसा देश है जहां जीव-जंतु को जिंदा ही खाया जाता है। पारिस्थितिकी तंत्र एवं मानव जाति को अगर बचाना है तो हमें तुरंत जीव-जंतुओं की उपभोक्तावादी संस्कृति पर लगाम लगाना अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि पारिस्थितिकी चिंतन मनुष्य सहित समस्त जीवों के अस्तित्व एवं भविष्य से संबंधित विचार है। वर्तमान पारिस्थितिकी संकट वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक विकास, औद्योगिकरण, शहरीकरण, भूमंडलीकरण, उपभोक्तावादी संस्कृति, बढ़ती जनसंख्या आदि का संयुक्त परिणाम है। मानव के भोगवादी प्रवृत्ति ने आज प्रकृति के संतुलन को खतरे में डाल दिया है। यही कारण है कि हमें अकाल, बाढ़, सूखा, सुनामी, भूस्खलन आदि समस्याओं का निरंतर सामना करना पड़ रहा है। अंततः इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों की संवेदना प्रकृति तथा पारिस्थितिकी पर हो रहे शोषण तथा अत्याचार को लेकर प्रस्तुत हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. पारिस्थितिकी संकट और समाजवाद का भविष्य - रणधीर सिंह, पृ. 98
2. मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ - महुआ माजी, पृ. 84
3. बहाव - उषा ओझा, पृ. 94
4. मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ - महुआ माजी, पृ. 249
5. दावानल - नवीन जोशी, पृ. 63-64
6. अनबीता व्यतीत - कमलेश्वर पृ. 130-131
7. एक ब्रेक के बाद - अलका सरावगी, पृ. 127
8. रह गई दिशाएं इस पार - संजीव